International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 56-59

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 56-59
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-01-2015
Accepted: 21-02-2015

डॉ. दोलामणि आर्य
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

Correspondence
डॉ. दोलामणि आर्य
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

काशिका कालीन सामाजिक व्यवस्था

डॉ. दोलामणि आर्य

प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के मर्म की अवगति करने के लिये जितनी आवश्यकता सूत्रों की व्याख्या के महत्त्व का है, उतना ही योगदान सूत्रों में उदाहृत उदाहरणों तथा प्रत्युदाहरणों का भी है। इसी महत्त्व को इंगित करते हुए भगवान् पतंजलि ने कहा है–''न केवलं चर्चापदानि व्याख्यानम्। वृद्धिः, आत्, ऐज् इति किं तर्हि? उदाहरणम्, प्रत्युदाहरणम्, वाक्याध्याहार इत्येतत् समुदितं व्याख्यानं भवति''[1]। काशिकाकार ने अनेक प्राचीन वृत्तियों तथा परम्परा प्राप्त उदाहरणों को अपनी रचना में संकलित किया, जिनके माध्यम से तत्कालीन प्रतिबिम्बित ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है–

सामाजिक चित्रण

आयुधजीविसंघ –

आचार्य पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में आयुध जीवियों के निवास पर्वतों की चर्चा का उल्लेख अनेक सूत्रों पर किया है। इनमें से बहुत सारे आयुधजीवी लोग संघ बनाकर निवास करते थे। काशिकाकार ने उनमें से ह्रदगोल, अन्धकवर्त, रोहितगिरि तथा ऋक्षोद नामक पर्वतों के नाम का वर्णन किया है। [1] पर्वते इति किम्। के प्रत्युदाहरण में ''सांकाश्यका आयुधजीविनः'' उद्धृत किये, जो कि पर्वतीय नहीं थे। अग्निहोत्री के मतानुसार ह्रदगोल का प्राकृत नाम हिंगल था, जो अघोर या हिंगुला नदी के किनारे, समुद्रतट से कोई 20 मील की दूरी पर पर्वते श्रेणी के छोर के रूप में बलूचिस्तान अवस्थित है। [2] वाहीक देशीय आयुधजीवियों के उल्लेख के प्रसंग में काशिका में कुण्डीवृस, क्षुद्रक तथा मालव आयुधजीवियों का वर्णन प्राप्त होता है।[3] इसी सूत्र के प्रत्युदाहरण में शबरा एवं पुलिन्दा नामक आयुधजीवियों का नाम भी आया है। काशिका में त्रिर्गत नामक आयुधजीवियों के विषय में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया गया है–

''आहुस्त्रिगर्तषष्ठांस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी।
क्रौष्टकिजालमानिश्च ब्रह्मगुप्तोऽथ जानकिः।।[1]

काशिका के अनुसार कौण्डोपरथ, दाण्डकि, क्रौष्टकि, जालमानि, ब्रह्मगुप्त तथा जानकि ये छह आयुधजीवियों के महासंघ थे काशिका के संकेत से कुछ ब्राह्मण भी आयुधजीवी थे।[5]

पूग

काशिका के उल्लेख के अनुसार पूग भिन्न–भिन्न जातियों के संघ थे। व्रातों के समान ही ये भी अनियतवृत्तिक तथा द्रव्य प्राप्त करने के लिए संगठित थे। काशिका में पूगों को गण कहा गया है और उन गणों के नाम का भी उल्लेख किया गया है। पूगों के कुमारों के अलग संगठन थे। राजतन्त्र ''कुमारप्रत्येनाः'' के समान पूगों की कुमार संस्थाओं का अपने गणों के भीतर स्वतन्त्र अस्तित्व एवं महत्त्व था। काशिका में कुमारचातक, कुमारलोहध्वज, कुमार बलाहक और कुमारजीभूत नामक कुमार पूगों का वर्णन प्राप्त होता है। कुछ संघों के नाम ग्रामीण के नाम पर होते थे और कुछ स्वतन्त्र। ग्रामीण यदि देवदत्त या यज्ञदत्त हुआ, तो संघ का नाम देवदत्तक या यज्ञदत्तक बहुवचनान्त प्रयोग होता था। अन्य संघों के लोहध्वज, बलाहक, जीभूत, शिवि चावक आदि रूढ़ नाम थे।[6]

व्रात तथा व्रातीन

व्रात कर्म के द्वारा जीविकोपार्जन करने वालों को व्रातीन कहा जाता था। आचार्य पाणिनि के मत में व्रात कर्म जीविका का साधन था।[7] इसी सूत्र की व्याख्या में काशिकाकार ने उत्सेध शब्द का अर्थ शरीर माना है और उत्सेधजीवी का अर्थ शरीराभास से जीने वाला किया है। काशिका में व्रातसंघों के सदस्यों को ही व्रातीन संज्ञा मानी है। संघ से बाहर के उत्सेधजीवी व्रातीन नहीं कहलाते थे।

चरित्र

अष्टाध्यायी 5.4.46 सूत्र पर प्राप्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि व्यक्ति की प्रशंसा या निन्दा वस्तुतः उसके चरित्र के आधार पर होती थी–''चरित्रतोऽतिगृह्यते। सुष्ठुवृत्तवानन्यानतिक्रम्य गृह्यत इत्यर्थः। चरित्रेण क्षिप्तः। वृत्तेन क्षिप्तः। वृत्ततो क्षिप्तः''।[8] धन कुल की प्रतिष्ठा तथा विद्या यश के कारण के रूप में व्यवहृत होते थे। ''विद्यया यशः', 'धनेन कुलम्'[9]। काशिका के एक अन्य उदाहरण से ज्ञात होता है कि उस समय भी कन्या का जन्म होना शोक का कारण माना जाता था।[10] कुछ परिवारों में स्त्रियों की प्रधानता होती थी।[11]

शिक्षाव्यवस्था

काशिका में व्याख्यात सूत्रों के उदाहरणों एवं प्रत्युदाहरणों के द्वारा अनेक पूर्ववर्त्ती आचार्यों के व्याकरण विषयक मत का सहज ही बोध हो जाता है। काशिका में प्रदत्त कुछ उदाहरण तो महाभाष्य में भी अनुपलब्ध है।[12] जिस प्रकार पाणिनि व्याकरण में 'वृत्' समाप्ति का बोधक है। उसी प्रकार आपिशलि व्याकरण में 'दुष्' का स्थान है। काशिका में इन ऐतिह्य ग्रन्थों के स्वरूप को स्पष्ट रूप से संरक्षित किया गया है। काशिका के अनुसार वैयाघ्रपद्य का व्याकरण दश तथा काशकृत्स्न नामक प्रसिद्ध वैयाकरण का अपना व्याकरण ग्रन्थ तीन अध्यायों में विभक्त था।[13]

काशिका के अनुसार व्याडि के संग्रह की प्रतिष्ठा इतनी अधिक थी कि योग्य कन्या के वरण के लिए उसका अध्ययन करना परम आवश्यक माना जाता था। विद्यार्थी कुमारी प्राप्ति की कामना से दाक्षादि प्रोक्त ग्रन्थों का अध्ययन करने लग जाते थे। काशिका वृत्ति में कुणि आदि आचार्यों तथा अनेक प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो ऐतिहासिक व्याकरण के विकास परम्परा को समझाने में परम सहायक है।

शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में काशिका के उदाहरणों का अमूल्य योगदान है। काशिका के अनुसार चरणों का नाम मूल संस्थापक के नाम पर पड़ जाता है। काशिका में बताया गया है कि वैशम्पायन की चरक संज्ञा थी तथा उनके नौ शिष्य थे।[14]

ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी शब्दार्थ को स्पष्ट करते हुए काशिका का कथन है–ब्रह्म वेद को कहते हैं तथा उससे सहचरित अध्ययन को भी। उसके लिये संकल्पित व्रत ब्रह्मचर्य एवं ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने वाला ब्रह्मचारी कहलाता था।[15] काशिका में प्राप्त संकेतों से ज्ञात होता है कि वेद केवल त्रिवर्ग ही पढ़ते थे। त्रिवर्ग को विद्याग्रहण के लिये उपनीत तथा नियम का आसेवन करने वाला कहा गया है–''ब्रह्मचारी त्रैवर्णिकोऽभिप्रेतः। स हि विद्याग्रहणमुपनीतो ब्रह्म चरति''।[16] काशिका काल तक गुरुकुल सेवा में जागरूकता और उसके दोषों को छिपाकर रखना, छात्र की परिभाषा माना जाने लगा था। ''छादनादवारणाच्छत्रम्। गुरुकार्यैष्वविहतस्तच्छिद्रावरणप्रवृत्तछत्रशील शिष्यश्छात्रः''[17]। निश्चित रूप से यह परिभाषा उन तथाकथित गुरुओं के द्वारा निर्धारित लगती है, जो छात्रों को अपनी सेवा का साधनमात्र समझते होंगे और समाज तक अपनी दुर्बलताओं के पहुँचने से भयभीत रहते होंगे।

खट्वारूढ़

पतंजलि के समय तक यह शब्द ब्रह्मचर्य की अवधि से पूर्व जो ब्रह्मचारी गृहस्थी बन जाता था, उसके लिये प्रयोग में आता था। परन्तु काशिका तक यह शब्द व्यापक अर्थ में प्रयोग होने लगा था। काशिका के अनुसार किसी भी कुमार्ग गामी व्यक्ति के लिये खट्वारूढ़ शब्द का प्रयोग किया जा सकता था। ''खट्वारोहणं चेह विमार्गप्रस्थानस्योपलक्षणम्। सर्व एवाविनीतः खट्वारूढ़ उच्यते। अपथप्रस्थित इत्यर्थः।[18]

खानपान

आमाद तथा क्रव्याद

काशिका में खानपान से सम्बद्ध उदाहरणों के द्वारा तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति को समझने में हमें महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। मांस को पकाकर खाने वाले व्यक्ति को 'क्रव्याद' कहते थे, जबकि धान्य एवं मांस को पकाए बिना कच्चे खाने वाले क्रमशः 'आमाद' वा 'क्रव्याद' कहलाते थे।[19]

शाराव

पकाए गए चावल को ओदन कहा जाता था। दूसरा नाम 'भक्त' भी था। ओदन खाने में प्रयुक्त पात्र को काशिका में 'शराव' कहा गया है। उस शराव नामक पात्र में दिया हुआ भक्त को 'शाराव' भक्त कहते थे।[20]

इसके अतिरिक्त उच्छिष्ट अन्न के लिये 'उद्धृत'[21] यवागू के लिये 'श्राणा'[22], गुडपलल, घृतपलल, तिलपलल[23], घृतसूत था मूलकसूप[24], घृतशाक या मुद्गशाक[25], कौलत्थ और तैत्तिडीक[26], शर्करा[27], सुरा तथा सुरा के भेद–गुडमैरेय, मधुमैरेय, परममैरेय, पुष्पासव, फलासव, सर्पिमण्डकषाय, उमापुष्पकषाय, परमकषाय28, व्यंजन, उपसेचन तथा संसृष्टि[29] इत्यादि खानपान परक उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

शासनप्रणाली

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार राज्य शासन को सम्यक् प्रकार से निर्वाहन के लिए राजा ब्राह्मणों के साथ सन्धि करते थे।[36] जिसे कौटिल्य ने भी निम्नरूप से परिभाषित किया है– ''पणबन्धः सन्धिः''[31]। प्राचीन राज प्रणाली का संकेत काशिका में इस प्रकार प्राप्त होता है–''ब्राह्मणमिश्रो राजा। ब्राह्मणैः सह संहितः ऐकार्थ्यमापन्नः। सन्धिरिति पणबन्धेन ऐकार्थ्यमुच्यते32। काशिका में कहा गया है कि एक क्षत्रिय जाति में सारे परिवार या उपजातियाँ राजन्य नहीं होते थे। राजन्य केवल अभिषिक्त वंश्य कहलाते थे। उदाहरण के लिये अन्धकों एवं वृष्णियों में श्वाफल्क, चैत्रक, रोधक, शिनि और वासुदेव राजन्य थे, किन्तु द्वैप और हैमायन राजन्य नहीं थे–''अन्धकवृष्णय एते न तु राजन्याः। राजन्यग्रहणमिहाभिषिक्तवंश्यानां क्षत्रियाणां ग्रहणार्थम्''[33]।

ग्राम एवं नगर

काशिका में प्राचीन भारतीय ग्रामीण परम्पराओं का संरक्षण प्रयत्नपूर्वक किया गया है। महाभाष्य में अव्याख्यात सूत्रों पर काशिका के ग्राम एवं नगर विषयक उदाहरण ही हमें प्राचीन ग्राम एवं नगर व्यवस्था को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। काशिका में उल्लिखित ग्राम एवं नगर इस प्रकार है–दाक्षिकूलम्, माहकिकूलम्, देवसूदम्, भाजिसूदम्, दाण्डायनस्थली, माहकिस्थली, दाक्षिकर्षः[34]। दात्तमित्री, वैधूमाग्नी, काकन्दी, माकन्दी, माणिचरी, जारुषी35। ऐषुकावतम्, सैधुकावतम्, आहिमतम्, भावमतम्[36]।

आर्जुनावो देशः, शैवः[37]। दारुकच्छकः, पैप्पलीकच्छकः, काण्डाग्नकः, वैभुजाग्नकः, ऐन्द्रवक्त्रकः, सैन्धुवक्त्रकः, बाहुगर्तकः38। दाक्षिकन्थीयम्, माहकिकन्थीयम्, दाक्षिपलदीयम्, माहकिपलदीयम्, दाक्षिनगरीयम्, माहकिनगरीयम्, दाक्षिग्रामीयम्, माहकिग्रामीयम्, दाक्षिहृरदीयम्, माहकिहृरदीयम्[39]। कटनगरीयम्, कटघोषीयम्, कटपल्लवीयम्40। पाटलिपुत्रकः, ऐन्द्रचक्रकः, काकन्दकः, माकन्दकः[41]।

इनके अतिरिक्त सैकड़ों ग्रामों एवं नगरों का उल्लेख काशिका में पाया जाता है।

जनपद

काशिका के अनुसार गांवों के समूह को जनपद कहते हैं–'ग्रामसमुदायो जनपदः''[42]। उन जनपदों के स्वामी क्षत्रिय होते थे। जिनकी संज्ञा जनपदिन् हुआ करती थी। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में जनपद सम्बन्धी विचार व्यापक रूप में प्रकट किया है[43]। महाभाष्य में भी साल्व का उल्लेख अनेकों बार प्राप्त होता है। काशिकाकार साल्व के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि साल्वा नामक एक क्षत्रिया थी, उनकी सन्तान साल्व या साल्वेय कहलाती थी। उनके निवास का नाम साल्व जनपद हुआ। इसके छह अवयवों का उल्लेख काशिका में प्राप्त होता है–उदुम्बर तिलखल, मद्रकार, युगन्धर, भुलिंग तथा शरदण्ड। इनमें निवास करने वाले लोग क्षत्रिय वृत्तियों से सम्पन्न थे।[44] डॉ. अग्रवाल के मत में साल्व अत्यन्त प्राचीन जाती थी जो बलूचिस्तान और सिन्धु होती हुई पश्चिम से आई थी और राजस्थान में बस गई।[45] पाणिनि सूत्रों पर उल्लिखित काशिका में व्याख्यात कुछ जनपद तथा जनपदी, जोकि महाभाष्य में भी अनुल्लिखित है–

मूलक्षत्रिय	जनपद	राजा	क्षत्रियापत्य
पुण्ड्र	पुण्ड्र	पौण्ड्र	पौण्ड्र
सुह्म	सुह्म	सौह्म	सौह्म
निषध	निषध	नैषध्य	नैषध्य
निपथ	निपथ	नैपथ्य	नैपथ्य
अदुम्बर	अदुम्बर	औदुम्बरि	औदुम्बरि
तिलखल	तिलखल	तैलखलि	तैलखलि
मद्रकार	मद्रकार	माद्रकारि	माद्रकारि
युगन्धर	युगन्धर	यौगन्धरि	यौगन्धरि
भुलिङ्ग	भुलिङ्ग	भौलिङ्गि	भौलिङ्गि
शरदण्ड	शरदण्ड	शारदण्डि	शारदण्डि46

इसके अतिरिक्त काशिका में कुमारी, चिखल्लिनिकाय तथा जनपदविधि को भी जनपद ही स्वीकार किया गया है तथा ओपुष्ट और श्यामायन नामक जनपदावधियों का भी वर्णन किया है।[47]

व्यापारिक गतिविधियाँ

तुलाप्रग्राह

सामान्य रूप से महाभाष्य और काशिका दोनों ग्रन्थों में व्यापार, वाणिज्य तथा लेनदेन प्रक्रिया के लिये व्यवहार शब्द दृष्टिगोचर होता है। जैसे–शतस्य व्यवहरति, सहस्रस्य व्यवहरति आदि। काशिका के एक संकेत से ज्ञात होता है कि व्यापार या वाणिज्य कार्य केवल वणिक् जाति विशेष के ही हाथ में नहीं था–''वणिक्सम्बन्धेन च तुलासूत्रं लक्ष्यते, न तु वणिजस्तन्त्रम्। तुला प्रगृह्यते येन सूत्रेण स शब्दार्थः। तुलाप्रग्राहेण चरति, तुलाप्रग्रहेण चरति वणिगन्यो वा''।

सार्थ

''तद्गच्छति पथिदूतयोः'' सूत्र के प्रत्युदाहरण के रूप में सुघ्न जाने वाले सार्थ का उल्लेख किया है। व्यापार सम्बन्धी यात्रा के सन्दर्भ में सार्थ वहन के महत्त्व का पता चलता है। सार्थ बनाकर चलने वालों को सार्थिक कहते थे।

परिक्रयण

काशिका में प्राप्त वर्णन के अनुसार एक निश्चित धनराशि देकर निश्चित अवधि के लिये व्यक्ति का श्रम खरीदने वाला अवक्रेता कहलाता था, इस क्रम की प्रक्रिया ही परिक्रयण कहलाती थी।[48]

अनुपदीन

चर्मकार पैर की नाप लेकर जूता का निर्माण करते थे, जिसे काशिकाकार ने 'अनुपदीनः'' कहा है[49]। कुछ चर्मकार जूते की तली में गत्ता, लकड़ी या अन्य ऐसी वस्तु भर देते थे। कुछ जूते केवल चर्म के बनते थे, जो 'सर्वचर्मीणः' कहे जाते थे।[50]

परिवहन

तत्कालीन समाज में आने जाने के जिये मुख्य रूप से साधन के रूप में शकट या रथ का प्रयोग होता था। ले जाने के लिये प्रयोग में लाया जाने वाला साधन शकट 'वह्य' कहलाता था। काशिका में प्राप्त उल्लेख के अनुसार वाहन दो प्रकार के होते थे। स्थलपथ वाले वाहन तथा जलपथ वाले वाहन। काशिका के अनुसार जल के वाहनों को 'उदवाहन' या 'उदकवाहन' कहते थे।[51] द्विनावधनः, पंचनावप्रियः, पंचनौः तथा दशनौः आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है।[52]

परिवृतरथ

पाण्डुकम्बल से आच्छादित रथ को काशिका में पाण्डुकम्बली कहा गया है। द्वीपी तथा व्याघ्र के चमड़े से भी रथों का आच्छादन किये जाने का संकेत आचार्य पाणिनि ने किया है। जिसके उदाहरण काशिकावृत्ति में संरक्षित हैं–द्वीपेन परिवृतो रथो द्वैषः, वैयाघ्रः।[53] आश्वरथ, औष्ट्ररथ, गार्दभरथचक्र आदि का उल्लेख पाया जाता है।[54] उत्तरधुरीणः, दक्षिणधुरीणः, एकधुरीणः, सर्वधुरीणः आदि उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं।

द्रव्यक, पण एवं मुद्राएं

आचार्य पाणिनि ने द्रव्यक शब्द का उल्लेख किया है। द्रव्य को एक स्थान से देशान्तर को ले जाने वाला, उठाकर रखने या ढोने वाला तथा उत्पन्न करने वाला द्रव्यक कहलाता है।[55] इन क्रियाओं के लिये अष्टाध्यायी में क्रमशः 'हरति, वहति तथा आवहति' पदों का प्रयोग किया गया है। काशिकाकार ने 'हरति' का अर्थ चुराना भी स्वीकार किया है। काशिका में व्यापारिक मार्गों का इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है–'योऽयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात्, तया यदवरं कौशाम्ब्या, तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे, तत्र सक्तून् पास्यामः'' जो व्यापारिक गतिविधियों का संकेतक है।

प्राचीन भारत में मुद्राओं तथा सिक्कों का प्रचलन था। सुवर्ण मुद्राओं में निष्क का कई बार महाभाष्य में भी उल्लेख किया गया है। निष्क का व्यवहार कण्ठाभरण के रूप में प्राचीन काल से चला आ रहा है। जिसका संरक्षण काशिका में किया गया है–''हिरण्यपरिमाणं धने''[56] सूत्र पर काशिका में प्रत्युदाहरण के रूप में 'निष्कमाला' का उल्लेख प्राप्त होता है। द्विसुवर्णधन[57], द्वैशाण, त्रैशाण[58], सूपेशाण, कार्षापण, प्रति, अध्यर्धकार्षापणिकम्, द्विकार्षापणिकम्, अध्यर्धप्रतिकम[59], द्विप्रतिकम् आदि मुद्राओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार काशिका के उदाहरणों के माध्यम से प्राचीन भारतीय परम्परा को जानने तथा समझने में हमें अपूर्व सहायता प्राप्त होती है।

फुटनोट

1. महा॰, पस्पशाह्निक।
2. का॰ 4.3.91।
3. पत॰ भारतवर्ष पृ॰–77
4. का॰ 5.3.114।
5. का॰ 5.3.116।
6. का॰ 5.3.116।
7. का॰ 5.3.112।
8. अष्टा॰ 5.2.21।
9. का॰ 5.4.46।
10. का॰ 2.3.23।
11. का॰ 3.2.20।
12. का॰ 5.4.116।
13. अष्टा॰ 2.1.10।, 4.3.69, 1.3.36।

14. 5.1.58 ।
15. का॰ 4.3.104 ।
16. का॰ 6.3.86 ।
17. का॰ 5.2.134 ।
18. का॰ 4.4.62 ।
19. का॰ 2.1.26 ।
20. का॰ 4.2.14 ।
21. का॰ 4.2.14 ।
22. का॰ 4.2.14 ।
23. का॰ 4.4.47 ।
24. का॰ 6.2.128, 135
25. का॰ 6.2.128 ।
26. का॰ 6.2.128 ।
27. का॰ 4.4.4 ।
28. का॰ 4.2.83 ।
29. का॰ 6.2.70, 6.2.10 ।
30. का॰ 4.2.26 ।
31. पाणिनकालीन भारतवर्ष, पृ॰–392 ।
32. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 7.1
33. का॰ 6.2.154 ।
34. का॰ 6.2.34 ।
35. का॰ 6.2.129 ।
36. का॰ 4.2.76 ।
37. का॰ 4.2.72 ।
38. का॰ 4.2.69 ।
39. का॰ 4.2.126 ।
40. का॰ 4.2.142 ।
41. का॰ 4.2.139 ।
42. का॰ 4.2.139 ।
43. का॰ 4.2.123 ।
44. का॰ 4.2.82 ।
45. अष्टा॰ 4.1.168, 4.2.81, 4.3.37 ।
46. का॰ 4.1.173 ।
47. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ॰–55
48. का॰ 4.1.168 से 178 तक ।
49. का॰ 4.2.124 ।
50. 46. का॰ 3.3.52 ।
51. 47. का॰ 4.3.85 ।
52. का॰ 1.4.44 ।
53. का॰ 5.2.9 ।
54. का॰ 5.2.5 ।
55. का॰ 6.3.58 ।
56. का॰ 5.4.99 ।
57. का॰ 4.2.12 ।
58. का॰ 4.3.122 ।
59. अष्टा॰ 5.1.50 ।
60. अष्टा॰ 6.2.55 ।
61. का॰ 6.2.55 ।
62. का॰ 7.3.17 ।
63. का॰ 5.1.29 ।